www.aureoleonline.in, ISSN: 2249 - 7862 (Print): 2455-877X(online)
Aureole, Vol. VIIII, December 2016 PP 28-34

मुक्तिबोध का साहित्यिक दर्शन

* जस्टी इम्मानुवल

सारांश

गजानन माधव मुक्तिबोध समकालीन हिन्दी साहित्य के बुनियाद पर प्रतिष्ठित साहित्यकार है। अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ से लेकर एक जीवन दर्शन अपनाने का प्यास मुक्तिबोध में था। एक जीवन दर्शन अर्थात मार्क्सवाद को अपनाने के बाद वे जीवन और साहित्य में मार्क्सवादी बन गये थे। मार्क्सवादी दर्शन का अधिकांश तत्व मुक्तिबोध के साहित्य में पाया जाता है। समानता पर आधारित एक समाज मुक्तिबोध का स्वप्न था। वे शोषण के विरुद्ध क्रांति चलाना चाहते हैं। पूंजीवाद का विरोध तथा उस व्यवस्था के विरुद्ध कुछ करने की संकल्पना का जो स्वप्न मुक्तिबोध के साहित्य का प्राण है।

Keywords: मार्क्सवाद, भाववाद, पूँजीवाद, सांस्कृतिक परिष्कार, पक्ष धरता, समझौता, विखदृष्टि, संघर्ष, ज्ञानात्मक संवेदना, संवेदनात्मक ज्ञान, रचना प्रक्रिया

* *सहायक आचार्य, अलफोनसा कॉलेज, पाला*

गजानन माधव मुक्तिबोध समकालीन हिन्दी साहित्य की बुनियाद पर प्रतिष्ठित एवं सर्वाधिक चर्चित साहित्यकार है। वे नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। हिंदी साहित्य में जहाँ समकालीनता की चर्चा होती है वहाँ मुक्तिबोध की चर्चा के बिना आगे बढ़ना असंभव है। मुक्तिबोध साहित्य के संबन्ध में एक मौलिक विचार रखने वाले साहित्यकार है। साहित्य चिंतन में उनका नज़र मात्र भारतीय साहित्य पर सीमित नहीं बल्कि विश्वचेतस से अनुप्राणित है। अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ में उन पर बर्गसॉ इमर्सन जैसे भाववादी दार्शनिकों का प्रभाव था लेकिन एक व्यवस्थित जीवन दर्शन अर्थात मार्क्सवाद अपनाने के बाद उन्होंने तमाम व्यक्ति केंद्रित और भाववादी दर्शनों का विरोध किया। वे दुनिया भर में समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था कायम करना चाहते हैं। उनकी राय में भारत में साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था समाप्त होते ही पूँजीवादी व्यवस्था ने उसका स्थान ले लिया है। वैयक्तिक पूँजी पर आधारित यह व्यवस्था समाज में बिल्कुल असमानता डालनेवाली तथा स्वार्थता की ढाँचे पर निर्मित है। इस ह्रासशील व्यवस्था का विरोध तथा उस व्यवस्था के विरुद्ध कुछ करने की संकल्पना का जो स्वप्न मुक्तिबोध की साहित्यिक कृतियों का प्राण है। वर्तमान व्यवस्था की अमानवीयता का शिकार शोषित पीड़ित संघर्षरत और हाशिएकृत औसत आदमी उनके साहित्य के केंद्र में है। इस मामूली आदमी की समस्याओं से मुक्तिबोध का मन बेचैन है। इसी बेचैनी के कारण वे जीवन भर संघर्षरत दीख पड़ते हैं। उनके अपने शब्दों में -

"समस्या एक / मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में / सभी जन सुखी सुंदर व शोषण मुक्त कब होंगे।"1

समाज पर मुक्तिबोध की उदात्त दृष्टि यहाँ बिंबित है। सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण शोषण रहित समानता पर आधारित एक पूर्ण समाज की संकल्पना मुक्तिबोध में ज़रूर थी। उनकी राय में इस लक्ष्य की प्राप्ति का एक मात्र उपाय संघटन और क्रांति है इसलिए चंपल की घाटी में शीर्षक प्रसिद्ध कविता में कवि चेतावनी देता है -

"याद रखो / कभी अकेले में मुक्ति न मिलती / यदि वह है तो सबके ही साथ है।"2

मुक्तिबोध साहित्य के प्रति समर्पित, प्रतिबद्ध एवं दृढ़ संकल्प रखनेवाले साहित्यकार है। वे साहित्य के मानवीय पक्ष को ही प्रधानता देना चाहते हैं। उनके साहित्यिक प्रतिमान आगामी साहित्य के लिए मार्गदर्शी है। उनकी राय में साहित्य का लक्ष्य मनुष्य को तमाम बंधनों से मुक्ति की रास्ते की ओर अग्रसर करना है। उन्होंने साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिष्कार माना है। उनके अनुसार साहित्य में जनता के जीवन मूल्यों तथा जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करना चाहिए। "जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श मनोरंजन से लगातार तो क्रांतिपथ पर मोडने वाला साहित्य, मानवीय भावनाओं का उदात्त वातावरण उपस्थित करने वाला साहित्य, जनता का जीवन चित्रण करनेवाला साहित्य, मन को मानवीय तथा जन को जन जन करनेवाला साहित्य, शोषण और सत्ता के घमण्ड को चूर करनेवाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य, प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्यों वाला साहित्य सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित है।"3 इससे स्पष्ट है कि साहित्य के मूल में मानवीय भावनाओं का होना ज़रूरी है क्योंकि तभी वह गंभीर मसलों को सभाविष्ट कर सकता है।

साहित्य में पक्षधरता का संबन्ध मनुष्य के विश्वबोध और सद्-असद्-विवेक बुद्धि अर्थात अंतरात्मा के विवेक से हैं। "पक्षधरता हमेशा रही है, जाने-अनजाने। प्रश्न यह है कि वह पक्षधरता सही ढंग की है या गलत ढंग की।"4 लेकिन आज के ज़माने में लोग आत्म रक्षा के लिए मूल्यबोध छोड़कर समझौते के लिए तैयार होते हैं। अतः अधिकांश मानव गलत ढंग की पक्षधरता का शिकार हैं। मनुष्य में विश्वबोध और अंतरात्मा का विवेक नष्ट हो रहा है। सही ढंग की पक्षधरता साहित्य के लिए अभिकाम्य है।

मुक्तिबोध के अनुसार साहित्य को विविध पक्षीय दृष्टियों से देखना चाहिए। कारण यह है कि साहित्य जीवन से उपजता है और अंततः उसका प्रभाव भी जीवन पर पडता है। यह जीवन का प्रतिबिंब है। इसलिए हमें सबसे

पहले जीवन की चिंता होनी चाहिए। मनुष्य का जीवन जितना व्यापक होगा, विविध क्षेत्रीय होगा तथा जीवन-जगत की विभिन्न विकासमान प्रक्रियाओं में भाग लेता रहेगा उतना ही वह समृद्ध होगा। मनुष्य को मानवोचित जीवन प्राप्त करने के लिए जिन आध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता है इसके संबन्ध में हमारे द्वारा प्राप्त निष्कर्ष की योग्यता आदि का चित्रात्मक, यथार्थवादी अंकन साहित्य के महत्व को बढाते हैं। भावानुभूति साहित्य के लिए महत्वपूर्ण है। जीवन मूल्य और आदर्श प्रस्थापित करनेवाला साहित्य श्रेष्ठ तभी हो सकता है जब उसमें उत्कट भावानुभूति हो। जिस चीज़ के प्रति भावानुभूति है वह वस्तु उस अनुभूति को उत्कट करने में सहायक भी है। वे जीवन मूल्य उस अनुभूति को तपाने में सहायक हैं। साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य बढ जाता है।

साहित्य में जिज्ञासा का महान रोल होता है। जिज्ञासू आग्रहों, दुराग्रहों से मुक्त है। इसलिए साहित्य में यथार्थवादी अंकन के लिए जिज्ञासा अनिवार्य है। मुक्तिबोध के शब्दों में, "कहा जाता है कि साहित्य हृदय की भावनाओं से उत्पन्न होता है। इस वाक्य में यह जोडा जाना चाहिए कि भावना जिज्ञासा की पैठ के, उसके द्वारा की जानेवाली तटस्थ तथा तीव्र खोज के बिना ऊँचा साहित्य उत्पन्न नहीं कर सकती।"5

उत्तम साहित्यिक कृतियों के सृजन के लिए साहित्यकारों को विश्वदृष्टि की अनिवार्यता है। विश्वदृष्टि या विचारधारा साहित्यिक गतिशीलता के लिए अनिवार्य हैं। आज के ह्रासोन्मुख साहित्य के उदय का कारण ही विश्वदृष्टि का आभाव हो रहा है। मुक्तिबोध लिखते हैं - "विचारधारा का न होना, या अविश्वास या अश्रद्धा को विचारधारा मान लेना, प्रश्न को ही उत्तर का स्थान देकर हाथ झाड लेना हमारी नवीनतम साहित्यिक प्रकृति का एक लक्षण है।"6 विश्वदृष्टि लेखक के लिए इसलिए अनिवार्य है कि वह मानव चेतना का अंग है।

मुक्तिबोध संघर्ष के पक्षधर कलाकार हैं वे उत्तम साहित्यिक कृति को संघर्ष की उपज मानते हैं। साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष अनिवार्य है। अपनी आलोच्य कृतियों में कई बार उन्होंने संघर्ष के तीन तत्वों पर विचार किया है। कला के संघर्ष को तत्व के एकत्रीकृत का, तत्व के परिष्कार का, तत्व के विकास का संघर्ष मानते हैं। साहित्य में तत्व और रूप की प्राप्ति के लिए वास्तविक जीवन को आत्मसात करने का संघर्ष, अभिव्यक्ति शैली की सीमाओं से संघर्ष और शब्द सभ्यता की अक्षमताओं से संघर्ष अनिवार्य है। कलाकार के तीन प्रकार के संघर्षों में "सुंदर कलाकृति के सृजन के लिए अभिव्यक्ति का संघर्ष, कलात्मक चेतना के आंगरूप संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, जीवन जगत में भीगने, रमने, अपने को निजबद्धता से अधिकाधिक दूर करने, अधिकाधिक मानवीय बनने का संघर्ष अर्थात् निजबद्धता से निजमुक्त होने का संघर्ष या सीमित अवस्था से व्यापकता प्राप्त करने का संघर्ष और वास्तविक जीवन के बुनियादी तथ्यों के कारण बननेवाली हलचलों की ज़िन्दगी के अलग अलग ढंग के ताने बानों का ताजुर्बा हाज़िल करने के लिए मानव समस्याओं को गहराई से ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक रूप से अनुभूत करके मानवता के उद्धार लक्ष्यों से एकाकार होकर वास्तविक जीवन की समृद्धि प्राप्त करने के हेतु वह संघर्ष जिसे हम तत्व के लिए तत्व प्राप्ति के लिए संघर्ष कह सकते हैं। अर्थात् यह तीसरा संघर्ष उद्देश्य-प्राप्ति का संघर्ष है। सच्चे मनीषी कलाकार जीवन में इन तीनों संघर्षों को एक साथ अपनाते हैं। इसलिए कलाकार का जीवन पीडाग्रस्त होता है केवल सृजन पीडा से नहीं अन्य पीडाओं से भी। कला का पहला संघर्ष अर्थात् संघर्ष का संबन्ध मानव की वास्तविकता के अधिकाधिक सक्षम उद्घाटन अवलोकन से हैं। दूसरे का संबन्ध चित्रण सामर्थ्य से हैं। तीसरे का संबन्ध थियरी से है, विश्वदृष्टि के विकास से है वास्तविकताओं की व्याख्या से है।"7

आज की कविता के भीतर तनाव का वातावरण है। यह पुराने ज़माने से ही कहीं बहुत अधिक परिवेश के साथ द्वंद्व स्थिति में प्रस्तुत है। इसलिये यह आवश्यक है कि कवि हृदय के द्वंद्वों का भी अध्ययन करें। अर्थात् वास्तविकता में बौद्धिक दृष्टि द्वारा भी अन्तः प्रवेश करें और ऐसी विश्वदृष्टि का विकास करें जिससे व्यापक

जीवन जगत् की व्याख्या हो सकें।8

अपने समानधर्मियों से सामंजस्य कर गरीबी की मनोदशाओं को समझनेवाले लोग तीन बातें अर्जित करते हैं। यथा (1) व्यक्तिगत संघर्ष को सामाजिक संघर्ष में बदलने की प्रक्रिया और सामाजिक संघर्ष में व्यक्तिगत संघर्ष का महत्व (2) नये मानवतावादी मूल्यों के लिए किये जानेवाले संघर्ष में चरित्र का महत्व, वैज्ञानिक विचारधारा का महत्व जिस पर विश्वदृष्टि आधारित है। विश्वदृष्टि में मानवीय मनोहारिता और सुदृढ़ता भी शामिल है। इस चरित्र में मानवीय सुकुमार गुणों का समन्वय तो है ही साथ ही उसमें समाज के अन्दर के दुष्प्रभावों से उत्पन्न धारणाओं के विरुद्ध अपनी सत्ता स्थापित करने की प्रवृत्ति हो। (3) अनुभवजन्य तथा विचारजन्य ज्ञान की प्राप्ति का अनुरोध होता है कि ज्ञान प्राप्तिकर्ता का चरित्र भी उस ज्ञान द्वारा निश्चित किये गये मानदण्डों और कार्यों की पूर्ति करें इस पूरे विकास के लिए व्यक्ति को एक से एक भयानक तनावों की राहों से गुज़रना पडता है। मुक्तिबोध तनाव को ऐतिहासिक भी मानते हैं क्योंकि समाज के भीतर चलनेवाली परिवर्तन प्रक्रियाओं का वे महत्वपूर्ण अंग है। इन तनावों का मर्म समझना, उनको उनके वास्तविक संदर्भ में देकर संवेदनात्मक ज्ञान के हार्दिक माध्यम द्वारा काव्य में प्रकट करना लेखक का ऐतिहासिक कार्य है।

मुक्तिबोध ने केवल साहित्य के तत्वों पर ही विचार नहीं किया है। साहित्य को रंग-रूप देनेवाले लेखक, उसे मार्गदर्शन देनेवाले समीक्षक के कर्तव्य एवं उनके आवश्यक गुणों पर ही मुक्तिबोध ने विचार किया है। उसके विचार में लेखक का जीवन आदर्श और साहित्यिक आदर्श में सामंजस्य अनिवार्य है। इसलिए लेखक के लिए आवश्यक है कि मूल्याधिष्ठित जीवनादर्श प्राप्त करें और उसे ही साहित्य में अभिव्यक्त करें। सच्चे लेखकों को अपने लिए आवश्यक गुणों पर सचेत रखना ज़रूरी था। मुक्तिबोध के विचार इस प्रकार हैं - "सच्चा लेखक जानता है कि वह कहाँ कमज़ोर है, कि उसने कहाँ सच्चाई से जी चुराया है, कि उसने कहाँ लीपा पोती कर डाली है, कि उसने कहाँ उलझा-चढा दिया है, कि उसे वस्तुतः कहना क्या था और कह क्या गया है, कि उसकी अभिव्यक्ति कहाँ ठीक नहीं है वह इसे बखूबी जानता है। क्योंकि वह लेखक सचेत है। सच्चा लेखक अपने खुद का दुश्मन होता है। वह अपनी आत्म-शान्ति को भंग करके ही लेखक बना रह सकता है। इसलिए लेखक अपनी कसौटी पर दूसरों की प्रशंसा को भी कसता है और आलोचना को भी। वह अपने खुद का सबसे बडा आलोचक होता है।"9

अपनी कृति का महत्व बढाने के लिए बहुत बडा थीम उठा लेने से काम नहीं चल सकता है। उसके लिए आवश्यक है मन पर अत्यधिक प्रभाव या आघात उत्पन्न करने वाले अंशों का उठाना। जैसे आसमान का चित्रण करने वक्त सामने के मैले डबरे में सूरज के बिंब का चित्रण करने तो वह जीवन सत्य से अधिक निकट होगा। संक्षेप में मुक्तिबोध साहित्यिक कार्य को पूरी तरह से सामाजिक कार्य मानते हैं। साहित्य का समाज दर्शन पर विचार करने के लिए साहित्य, साहित्यकार, आलोचक इत्यादि पक्षों से गुज़रकर ही उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं।

रचना प्रक्रिया

हिन्दी साहित्य में रचना प्रक्रिया पर सबसे गंभीरता तथा गहराई से मौलिक विचार मुक्तिबोध ने किये हैं। उन्होंने अपनी सभी आलोच्य कृतियों में रचना प्रक्रिया को अपेक्षित स्थान दिया है। काव्य की रचना प्रक्रिया का विश्लेषण, आलोचना के लिए अत्यंत अपेक्षित है। रचना प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए कलाकार का व्यक्तित्व विश्लेषण भी आवश्यक है। कवि-स्वभाव, कवि-दृष्टि और विषयवस्तु के अनुसार रचना प्रक्रिया बदलती है। कल्पना, भावना, बुद्धि, संवेदनात्मक उद्देश्य और इतिहास भूगोल को रचनाप्रक्रिया के मूलतत्व के रूप में

स्वीकार किया है। मुक्तिबोध ने अपने समय की सच्ची और सही सृजनशीलता को बल देने के लिए सृजन प्रक्रिया का वर्णन और विश्लेषण किया है। उन्होंने आलोचना की पूर्णता के लिए इन सभी तत्वों का मूल्यांकन आवश्यक माना है। रचनाप्रक्रिया संबन्धी मुक्तिबोध के विचार हिन्दी आलोचनात्मक इतिहास की अमूल्य निधि है।

'एक साहित्यिक की डायरी' का 'तीसरा क्षण' शीर्षक प्रथम लेख रचनाप्रक्रिया संबन्धी है। इसमें कला के तीन क्षणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है, "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटसी अपनी आँखों के सामने ही खडी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और प्रक्रिया की परिपूर्णता तक की गतिमानना।"10

मुक्तिबोध की दृष्टि में कला बाहरी और भीतरी तत्व व्यवस्था का भाग है। यह एक ऐसा अंतर्तत्व है या मानसिक प्रतिक्रिया है जो बाहर के धक्कों से विकसित है। उस मानसिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करने का जबरदस्त धक्का प्रथम क्षण में ही मिलता है। उससे वह तरंगायित होकर मनस्पटल पर उपस्थित होते हैं। कल्पना बिंब, स्वर, या प्रवाह से संवृत्त होकर उनमें रूप आ जाता है। सृजन प्रक्रिया का यह प्रथम क्षण है। कल्पना का कार्य यहाँ शुरू होता है बोध पक्ष भी इस क्षण में सक्रिय है। फैंटसी भी यहाँ जन्म लेती है। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' शीर्षक लेख में इस क्षण को 'उद्घाटन क्षण'11 बताया है। यही से दूसरा क्षण शुरू होता है। इस क्षण में रचनाकार की दृष्टि उस पर उद्घाटित तत्व रूप के रस में लीन होने लगती है। साथ ही बाहर से पर्यावलोकन भी करती है। फलतः एक ओर रस का प्रवाह या भाव प्रवाह अन्य समस्वभावी और समरूप अनुभवों को उस तत्व में मिला देता है, तो दूसरी ओर अंतकरण में संचित जीवन मूल्य या आदर्शात्मक सत्ता को जो अपने बाह्य जगत के पूर्वप्राप्त मूल्य है उस तत्व में मिलने लगती है। "कल्पना उद्दीप्त होकर संवेदना से आप्लूत उस मूल तत्व को समरूप अनुभवों और जीवन मूल्यों से मिलाती हुई एक संश्लिष्ठ जीवन चित्रशाला अर्थात् फैंटसी उपस्थित कर देती है।"12 यह सामान्वीकरण का अवसर है। इससे फैंटसी को एक नया रूपरंग मिलती हैं। रचना प्रक्रिया का यह क्षण स्थिति बद्धता से स्थिति मुक्त होने का या अपने से परे जाने का क्षण है। वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक होने के इस दौरान में फैंटसी वास्तविक अनुभव से स्वतंत्र बन बैठते हैं। फैंटसी अनुभव की कन्या है और वह कन्या का अपना स्वतंत्र विकासमान व्यक्तित्व है वह अनुभव से प्रस्तुत है इसलिए वह उससे स्वतंत्र है कला का यह दूसरा क्षण है कि जिसमें अंतर्तत्व या वेदनात्मक हेतु अधिक महत्वमय मालूम होता है। और अभिव्यक्ति के लिए छटपटाते हैं। इस छटपटाहट को हम शब्द रंग तथा स्वर में अभिव्यक्त करने लगते हैं तब कला का तीसरा क्षण शुरू होते हैं। शब्दबद्ध होने का यह क्षण सबसे अधिक दीर्घ क्षण है। इस क्षण भी शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर लेखक के समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह विकसित और परिवर्तित करती हुई बहने लगती है। इस प्रवाह में फैंटसी सारे रंग घुलकर अपना सारा व्यक्तित्व समस्त चेतना के साथ बहने लगती है। इस परिवर्तन में फैंटसी अपने मूलरूप से बहुत अधिक परिवर्तित होकर नवीन रूप धारण करती है। स्पष्ट है कि मुक्तिबोध के लिए फैंटसी मात्र शिल्प सजगता नहीं है। वह उनके काव्यदर्शन का अभिन्न अंग है।

सृजन प्रक्रिया की गतिशीलता के लिए महत्वप्रतीति अनिवार्य है। यदि "प्रथम क्षण में प्राप्त अनुभव के भीतर महत्व की भावना नहीं है तो वह दूसरे क्षण में परिणत नहीं होगा। अर्थात् प्रथम क्षण का वह अनुभव जीवन के अन्य साधारण अनुभवों से भिन्न होता है क्योंकि उसमें अनुभव और अनुभव के महत्व की भावना दोनों बीज रूप में रहने से दर्शकत्व और भोक्तृत्व की स्थिति मुक्तता और स्थिति बद्धता के परस्पर विरोधी बिंदु रहते हैं। नहीं तो भोक्तृत्व में दर्शकत्व कि स्थिति और आगे चलकर अनुभव में कल्पना का योग ही न होगा।"13

मुक्तिबोध ने कला और साहित्य में सौंदर्य के नये प्रतिमान प्रस्तुत करने का कार्य भी किया है। उनकी राय में सौंदर्य तब उत्पन्न होता है जब सृजनशील कल्पना के सहारे, संवेदित अनुभव ही का विस्तार हो जाए। वास्तविक अनुभव और अनुभव की संवेदनाओं द्वारा प्रेरित फैंटेसी के बीच कल्पना की एक भूमिका है। यह कल्पना कवि के वास्तविक अनुभव को व्यक्तिबद्धता से हटाकर निर्वैयक्तीकरण करते हुए उसका विस्तार करती है। कवि की राय में बिना वास्तविक अनुभव के, मात्र कल्पना से सौंदर्य असंभव है। सौंदर्य की उत्पत्ती वास्तविक अनुभव के साथ कल्पना के सामंजस्य से होती है। कवि की राय में सौंदर्य का क्षण मात्र कवि-कलाकारों का नहीं है। यह राह चलनेवाले साधारण जनों में भी होती है। लेकिन उनमें अभिव्यक्ति क्षमता न होने के कारण वे अपने सूक्ष्म भावों और आवेशों को ठीक ठीक मूर्त नहीं कर पाते।

संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना

यह मुक्तिबोध की प्रसिद्ध अवधारणा है। इसका सीधा संबन्ध कलाकार की सर्गात्मकता से है, साहित्य सृजन से है। उनकी राय में रचना का उत्भव कलाकार की भीतरी संवेदना और बाहरी ज्ञान के सम्मिलन से है। संवेदना का संबन्ध भोक्तृत्व से है तो ज्ञान का संबन्ध दर्शकत्व से हो, संवेदना का संबन्ध स्थितिबद्धता से है तो ज्ञान का संबन्ध स्थिति मुक्तता से है, संवेदना का संबन्ध वैयक्तिकता से है तो ज्ञान संबन्ध समाज या सामाजिकता से है। संवेदना का संबन्ध मन से हैं तो ज्ञान का बुद्धि से। संवेदना का अनुभव से संबन्ध हो तो ज्ञान का दृष्टि से। संवेदना का संबन्ध मूर्तता से है तो ज्ञान का संबन्ध अमूर्तन से। संवेदना का विशिष्टता से संबन्ध है तो ज्ञान का सामान्य से। अर्थात् रचना प्रक्रिया में ज्ञान में संवेदना का या संवेदना में ज्ञान का, मूर्तन में अमूर्तन का या अमूर्तन में मूर्तन का, निर्वैयक्तिकता में वैयक्तिकता या वैयक्तिकता में निर्वैयक्तिकता का सफल सम्मिश्रण होता है। इस प्रकार एक तत्व में दूसरा तत्व के मिलन से मूल तत्व समाप्त नहीं होती बल्कि सार तत्व के रूप में इसके भीतर समाहित होती है।18 संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना का जटिल द्वंद्वात्मक सम्मिश्रण दूसरे क्षण में ही होता है। इसकी सफलता के लिए संवेदनात्मक उद्देश्य तथा बुद्धि तत्व का सक्रिय सहयोग आवश्यक है।

कलाकार के व्यक्तित्व में एक साथ अनुभवित की स्थितिबद्ध संवेदना और दर्शक की स्थिति मुक्त दृष्टि है ये दोनों परस्पर विरोधी बातें एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करती हुई एक उच्चतर बिंदु पर फैंटसी खडी कर देती है इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया से परिष्कृत होकर कला का दूसरा क्षण आगे बढता जाता है जब यह क्षण बहुत आगे एक प्रवाहित हो जाता है तब आत्मपरकता में भी एक निर्वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता में भी एक आत्मपरकता उत्पन्न हो जाती है, मानो स्थितिबद्ध संवेदना ने स्थिति मुक्त दृष्टि को अपने स्थितिबद्धता प्रदान कर उसे अपने लिए स्थितिमुक्तता ले ली हो। अर्थात् आत्मपरकता में निर्वैयक्तिकता का या निर्वैयक्तिकता में आत्मपरकता का, स्थितिबद्धता में स्थितिमुक्तता का सफल सम्मिश्रण रचना प्रक्रिया में होता है।

निष्कर्ष

मुक्तिबोध मार्क्सवादी सामाजिक दर्शन को आधार बनाकर बिलकुल तटस्थ दृष्टि से ईमानदारी के साथ आलोचना करने लगे। दुनिया के प्रभावशाली दर्शनों तथा मानव इतिहास के प्रगतिशील विकास की सभी अवस्थाओं की समझ मुक्तिबोध में थे। इसलिए साहित्य के बुनियादी तत्वों जैसे साहित्यिक ईमानदारी, कलाकार का कर्तव्य, रचना प्रक्रिया, साहित्यिक तनाव, आधुनिक भावबोध, सौन्दर्यशास्त्र आदि पर उन्होंने प्रामाणिकता से विचार किया। उन्होंने साहित्य का संबन्ध मनुष्य से जोडा। उन्होंने जनता के लिए जनता का साहित्य बनाना चाहा। "मुक्तिबोध हृदय और बुद्धि दोनों से मार्क्सवादी थे। वे मार्क्स के ऐतिहासिक समाज, वैज्ञानिक विश्लेषण और उसके निष्कर्षों में आस्था रखनेवाले थे। इसलिए पूँजीवादी सामाजिक संरचना के स्थान पर समाजवादी सामाजिक

संरचना उनका सामाजिक लक्ष्यादर्श था। इस आदर्श की पूर्ति के बिना वे जन-समाज की मुक्ति, शोषण, उत्पीडन और अन्याय से मुक्ति असंभव मानते थे। अपने इस आदर्श लक्ष्य से प्रेरित होकर वे समीक्षा की ओर उन्मुख हुए हैं।"14

संदर्भग्रन्थ सूची :

1. मुक्तिबोध रचनावली दो - मुक्तिबोध, पृ. 243
2. वही, पृ. 419
3. मुक्तिबोध रचनावली पाँच - मुक्तिबोध, पृ. 76
4. मुक्तिबोध रचनावली - पाँच - मुक्तिबोध, पृ. 180
5. वही, पृ. 183
6. मुक्तिबोध रचनावली - चार - मुक्तिबोध, पृ. 45
7. मुक्तिबोध रचनावली - पाँच - मुक्तिबोध, पृ. 211
8. वही, पृ. 327
9. मुक्तिबोध रचनावली - चार - मुक्तिबोध, पृ. 53
10. वही, पृ. 85
11. मुक्तिबोध रचनावली - पाँच - मुक्तिबोध, पृ. 328
12. मुक्तिबोध रचनावली - पाँच - मुक्तिबोध, पृ. 329
13. मुक्तिबोध रचनावली - चार - मुक्तिबोध, पृ. 88
14. प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य - प्रभात त्रिपाठी, पृ. 120